॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

प्रभु! आपसे सुन्दर कौन हो सकता है? आपसे उत्तम वैज्ञानिक कौन हो सकता है जिसने इस जगत् को रचाया, जिसने इतने बड़े ब्रह्माण्ड का सर्वत्र जीवन मानव शरीर को बना दिया। पिण्ड को ब्रह्माण्ड बना दिया। कैसी सुन्दर विवेचना है, कैसी सुन्दर रचना है आपकी। मैं तो इसको किसी काल में भी नहीं जान पाता। मैं तो यही नहीं जान पाता कि प्रभु! मेरे एक क्षण समय में कितनी तरंगें उत्पन्न होती हैं, श्रोत्रों में कितने शब्दों की उद्बाधता होती है, भगवन् मैं तो संसार में कुछ नहीं जानता। मुझे तो भगवन्! एक ऐसा मार्ग दीजिए जिससे इस संसार में मेरे द्वारा विडम्बना न आ पाये क्योंकि संसार में नाना प्रकार की सुन्दरियों पर जब मेरी प्रवृत्तियाँ चलती हैं तो क्या वह सुन्दरियाँ मेरे लिए सुन्दर बन सकती हैं? किसी काल में सुन्दर बन सकती हैं। मेरे अन्तःकरण में यह सँस्कार जमते चले जायेंगे। वह जो आपने चित्त नाम का क्षेत्र बनाया है क्या उसमें भगवन्! मैं यह बीज बोता ही रहूँगा? यह मैं नहीं बोना चाहता। मैं तो यह चाहता हूँ कि यह जो बीज अँकुर मेरे द्वारा उत्पन्न होते रहते हैं प्रभु! इसका स्रोत ही नष्ट हो जाये और यह स्रोत उस काल में नष्ट होगा जब प्रभु! मैं आपको सर्वस्त्र में दृष्टिपात करूँगा और मौन हो जाऊँगा कि संसार में कुछ है ही नहीं। प्रभु! मैं तो उस काल में उत्तम बन सकता हूँ, उससे द्वितीय मेरे लिए कोई मार्ग है ही नहीं।

पूज्यपाद-गुरुदेव

अंक : 543 कुल पृष्ठ संख्या समग्र अंक : 618
वर्ष : 46 44 समग्र वर्ष : 52

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1. प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव	3
2. अनुक्रम		4
3. आत्मवेत्ता बनें	पूज्यपाद-गुरुदेव	5-23
4. दीक्षा	पूज्यपाद-गुरुदेव	24-36
5. ऋषियों के उद्‌गार		37
6. दान, पुस्तकों की सूची व पुस्तक प्राप्ति के स्थान तथा सूचना इत्यादि		38-42

नम्र-निवेदन

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज ने अपने प्रवचनों में वेद मन्त्रों का गुणगान करते हुए उनकी प्रचलित भाषा में व्याख्या की है। उसी अमृत वाणी को जनकल्याण के लिए ''सँहिता'' के रूप में प्रकाशित करने के लिए वैदिक अनुसन्धान समिति सभी श्रद्धालु एवम् दानदाताओं से सहयोग के लिए आह्वान करती है जिससे कि प्रकाशन का कार्य सुचारू रूप से ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होता रहे। सहयोग की राशि समिति के बैंक खाते में स्वेच्छानुसार भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्न प्रकार से हैः

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)
पंजाब नैशनल बैंक, खान मार्केट, नई दिल्ली
बैंक खाता नं. - 0149000100229389, IFSC Code – PUNB–0014900
website : www.shringirishi.in
Email : contact@shringirishi.in

।। ओ३म् ।।

आत्मवेत्ता बनें

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पुनः से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस वेदवाणी में उस परमपिता-परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान माना गया है। **हमारे यहाँ प्रभु की जो अनुपम प्रतिभा है वह मानव को चेतनित करती रहती है।** इसके अन्तःकरण में, क्या हृदय रूपी गुफा में एक अनुपम धारा मानव के समीप नित्यप्रति उस चेतना से प्राप्त होती रहती है। जैसे प्रातःकाल से मध्यकाल, मध्यकाल से सायंकाल होने लगता है, रात्रि छा जाती है उस रात्रि की गोद में मानव परणित हो जाता है। मुनिवरों! जब दिवस आता है, रात्रि सूर्य के गर्भ में जब लय हो जाती है तो मानव को एक नवीन चेतना प्राप्त हो जाती है। वह चेतना मानवीय चेतना है, उस चेतना का जो स्रोत है उसी को मेरे प्यारे ऋषिवर! परमपिता-परमात्मा की चेतना कहा जाता है। जब हम यह विचारने लगते हैं कि हमारे हृदय में कोई चेतना आती है, नवीनता आती है, मानो नवीनता सायंकाल को नहीं प्रातःकाल में ही आती है, सूर्य के उदय होने पर आती है या रात्रि के गर्भ में भी मानव का जीवन होता है और मानवीय चेतना उसे प्रदान की जाती है। **वही तो मेरा प्यारा प्रभु है जिसकी चेतना से मानव नित्यप्रति नवीन बनता रहता है।** उसी अनुपम चेतना से उसके हृदय में एक प्रवाह होता रहता है। जैसे जल अपने आसन पर दीर्घ गति में रमण कर रहा है। इसी प्रकार मानव के जीवन में भी एक महत्ता की प्रतिभा, महान् चेतना उस मानव

के हृदय में ओत-प्रोत हो जाती है, जिसको **आत्मिक-चेतना** कहते हैं जिसको हमारे यहाँ **ब्रह्म-चेतना** भी कहा जाता है।

मानव का सौभाग्य

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हमें उस प्यारे प्रभु का धन्यवाद करना चाहिए। प्रभु का धन्यवाद क्या है? प्रभु का धन्यवाद कहने से धन्यवाद प्रभु का नहीं होता, अपने स्वयं का धन्यवाद होता है। अपना तो भाग्य स्वीकार करना चाहिए, इससे मानव का अपना सौभाग्य होता है। यह सौभाग्य क्या? प्रभु की एक चेतना और प्रभु की एक अनुपमता हमें प्राप्त हो रही है। आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज के हमारे वेदपाठ में बड़ी सुन्दर विवेचना आती चली जा रही थी। जहाँ आत्म-चेतना के सम्बन्ध में विचार-विनिमय हो रहा था। त्रि-विद्या का भी विचार आता चला जा रहा था। वहाँ अधिकार तथा अनाधिकार का भी विषय आता चला जा रहा था। अधिकारी को वस्तु प्रदान की जानी चाहिए, अधिकारी को ही जब वस्तु प्रदान की जाती है तो समाज और राष्ट्र ऊँचा बना करता है।

मैं आज महानन्द जी के वाक्यों को लेकर नही चलना चाहता हूँ। केवल विचार यह आज हमें देना है कि आज हम सब वाक्यों पर विनिमय करने वाले बनें। क्योंकि संसार में कटु उच्चारण करते रहो तो बेटा! मानवीयता नहीं आएगी। **मानवता की यदि संसार में कोई प्रतिभा है तो मानव का यथार्थ भाषण है।** यथार्थ में मधुरता होनी चाहिए। उस मधुरता में एक सत्यवाद होता है। वह मानव के अन्तःकरण को छूता चला जाता है। जब मानव का अन्तःकरण उससे छू जाता है तो बेटा! मानव का अन्तःकरण परिवर्तित हो जाता है। वह जो अशुद्ध वाक्य उसके हृदय में एक अशुद्ध वाक्य स्थान को ग्रहण कर गया वह स्वतः शान्तता को प्राप्त होता रहेगा। जब मैं यह वाक्य उच्चारण करने के लिए चला करता हूँ कि हम वास्तव में यह विचार

अपना बनाने का प्रयास करें। अपने जीवन को जो क्रियात्मक बनाया जाता है, क्रियात्मक अपने जीवन में अभ्यास किया जाता है। अभ्यस्त बनता है, उस काल में बेटा! इस संसार में मानवता का प्रसार सहज होने लगता है। परन्तु मेरी प्यारी माता जब अपने जीवन को क्रियात्मक बना लेती है और अपना कर्तव्य पालन करके चला करती है संसार में तो माता सौभाग्यशाली होती है। मुनिवरो! देखो, यहाँ मुझे बारम्बार स्मरण आता रहता है जब महर्षि लोमश मुनि महाराज अपनी पत्नी के द्वारा थे। सोमकृति माता भुज्जुक ऋषि महाराज की पत्नी थीं। उनसे लोमश जी ने कहा हे मातेश्वरी! मेरे लिए क्या आज्ञा है? उस समय माता ने भुज्जुक से कहा कि हे प्रभु! इसके लिए क्या आज्ञा है? उन्होंने कहा ''ब्रह्मे प्रवः कृतम् लोकाः'', मानो तुम क्या चाहती हो देवी! तुम्हारी इच्छा क्या है? क्योंकि पिता की इच्छा भिन्न होती है और माता की इच्छा भिन्न होती है। उस समय माता ने कहा कि भगवन्! मेरी इच्छा तो ऐसी है कि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक संसार में तपस्वी होना चाहिए। क्योंकि जब माता का प्रिय बालक तपस्वी होगा तो माता को धन्यवाद प्राप्त होगा। यह आगे आने वाला जो मानव समाज है, यह माता को आदर की दृष्टि से दृष्टिपात करता है। जब उसके प्रति श्रद्धा और निष्ठा हो जाती है तो वास्तव में वह माता ही बन जाती है। इस प्रकार की धारा मैं चाहती हूँ। मुनिवरो! भुज्जुक ऋषि ने कहा कि मैं भी यही चाहता हूँ। क्योंकि हमारा ब्रह्म गृह है, ब्रह्म को जानने वाली परम्परा हमारे यहाँ प्रायः रही है। मुनिवरो! देखो, जब लोमश मुनि महाराज ने ऐसा कहा कि माता क्या आज्ञा है? तो माता ने आज्ञा दी पुत्र तुम तपस्वी बनो, तुम महान् बनो। अपनी आत्मा का शोधन करो। क्योंकि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने का केवल एक ही अभिप्राय है कि तुम अपने जीवन में कलंकित न हो जाना। जब माता का यह निर्देश, माता की यह पवित्र भावना बालक के हृदय में ओत-प्रोत हो जाती है तो मुनिवरो! देखो, बालक का अन्तःकरण माता

के विचारों से इतना पवित्र बन जाता है कि माता की आज्ञा का वह पालन करने लगता है।

गृह-आश्रम

मुनिवरो! देखो हमारे यहाँ यह भी एक विचार है, ऋषि मुनियों का विचार है और प्रकृति के सिद्धान्त से भी यह विचार होता है कि माताओं को अपने जीवन से कितना सुन्दर बनना है। कितना तपस्वी अपने जीवन को बनाना हैं। क्योंकि यह तो वसुन्धरा है, वसुन्धरा कहते हैं मानव जिसमें वशीभूत रहते हैं। ऋषि-मुनि इसी द्वार से आते रहते हैं जब माता के हृदय में एक निष्ठा उत्पन्न हो जाती है, पवित्रवाद आ जाता है तो उस समय माता अपने बालक को कर्त्तव्य की वेदी पर परणित कर देती है। मुनिवरो! उसका गर्भाशय ही इस प्रकार होता है कि विचारधारा गर्भ में ही उसकी बन जाती है।

बेटा! मुझे तो संसार में नाना साहित्य स्मरण आता रहता है। मुझे स्मरण आता रहता है महात्मा अष्टावक्र थे। महात्मा अष्टावक्र, माता के गर्भस्थल में थे तो तब माता को पिता ब्रह्म का उपदेश देते थे। रात्रिकाल आता तो ब्रह्म का उपदेश देते थे। इसी से महात्मा अष्टावक्र की आत्मा ऋषि की आत्मा बनी। पूर्वजन्म का काल भी उनका, ऋषि आत्मा का था। ब्रह्मवेत्ता माता के विचार जब अन्तःकरण में प्रवष्टि होते थे, देखो अन्तःकरण का ऐसा अप्रेत (स्थिर) विचार होता है जब माता के हृदय से प्रेरणा उत्पन्न होने लगती है। जब महात्मा अष्टावक्र को उनके पिता ब्रह्म का उपदेश दे रहे थे और उनका यह आदेश था कि यह जो वायु है यह अन्तःकरण में, इस महान् आकाश में अन्तरिक्ष में लय हो जाती है और यह अन्तरिक्ष लोकों में रमण कर जाते हैं। उसी समय माता के अन्तःकरण से यह जो गर्भाशय में प्लावित था वह माता के गर्भस्थल में वेदनित (ज्ञानवान) हो गया और उसने माता को प्रेरणा दी, माता का अन्तःकरण प्रेरित हो करके कह

रहा था, हे भगवन्! हे पतिदेव! यह वाक्य आपका अशुद्ध है। क्योंकि मेरी आन्तरिक भावना प्रेरणा दे रही है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! यह महान् आत्माओं का एक महान कृत्य होता है। माँ को भी सुन्दर उपदेश दिया जाता है। यह माताओं से जानकारी करने से प्राप्त होता है। बहुत सी माताएँ इस प्रकार की होती हैं जिनके गर्भस्थल में दैत्य प्रवृति का प्यारा पुत्र होता है। उनकी जो मनोभावना है, आहार है, आहारों की जो प्रवृत्ति है, वह भी अशुद्ध हो जाती है। वह कहीं नाना दूसरे के रक्त को पान करने की इच्छा जाग्रत हो जाती है। माताओं के गर्भस्थल में बेटा! ब्रह्मवेत्ता बालक होते हैं। ऊँची प्रवृति के होते हैं, माता की प्रेरणा, माता के हृदय की जो कामना होती है, इच्छाएँ होती हैं रसना का जो आस्वादन होता है वह उसी बालक के अनुकूल माता की रसना में प्रविष्ट हो जाता है। बेटा! यह अनुसन्धान का विषय है। यह ऐसा विषय नहीं है। यह प्रायः मेरी माताओं को अनुसन्धान करना है कि आज हम अपने महान् उस पवित्र विद्या को वैदिक परम्परा में अपनाने का प्रयास करें। जिस विद्या को अपनाने से माताओं के हृदय में, माताओं के अन्तःकरण की प्रेरणा और माताओं के गर्भस्थल से ऊँचे प्यारे पुत्रों का जन्म होता रहे। यह होता कैसे हैं? अनुसन्धान से होता है। यह ऐसे ही नहीं होता है। क्योंकि हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों ने नाना प्रकार के विचार दिए हैं उन विचारों में मैं आज जाना नहीं चाहता हूँ। वाक्य केवल उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि वास्तव में इस प्रकार की विद्या हमारे यहाँ परम्परा से चली आ रही है और इस विद्या के लिए ऋषि-मुनियों ने बड़ा बल दिया है। बड़ी बलिष्ठता उन्होंने प्रकट की है। मानव के द्वारा तथा माताओं के द्वारा ऐसी पवित्रता होनी चाहिए जिससे यह संसार ऊँचे बने। गृहस्थ आश्रम में आने का उन्हीं माताओं को अधिकार होता है, जो माता बुद्धिमती होती है, माता ही नहीं जो पुरुष बुद्धिमान होते हैं उनकों ही गृह-आश्रम में जाने का अधिकार होता है। विद्या को जानने वाला होता है वह गार्हपत्य अग्नि की पूजा करने वाला होता है। वैश्वानर नाम की अग्नि की पूजा करने

वाला व्यक्ति होता है। मेरी प्यारी माता अपने गर्भस्थल से प्यारे पुत्र को जन्म देती है। मेरे प्यारे ऋषिवर! अब मैं इन वाक्यों में अपना समय अधिक नहीं देना चाहता हूँ। यह तो भयंकर वन हैं मैं गृह आश्रम की चर्चा प्रकट करने लगता हूँ तो बेटा! वर्षों व्यतीत हो जाएंगे। इस विज्ञान के ऊपर मैं आज इतना अधिक समय तक उच्चारण करना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि हमारे यहाँ प्रत्येक रात्रि का प्रभाव होता हैं, नक्षत्रों का भी प्रभाव होता है। वेदों में बेटा! इस प्रकार की विद्या, इसका अनुकरण करना, विचारना यह मानव का स्वाभाविक गुण रहता है।

महान् व पवित्र समाज

मेरे प्यारे महानन्द जी ने कल अपनी वेदना प्रकट की, इनके हृदय में कितनी दाह थी। मैं उस दाह को नहीं लेना चाहता हूँ। हम उन वाक्यों को देना चाहते हैं जिससे समाज वास्तव में सहज ही ऊँचा बन जाता है। विचारों से ऊँचा बनता है और तप से ऊँचा बना करता है। मुझे स्मरण है वह काल रघु परम्परा का भी, उससे पूर्व का काल भी स्मरण है। ऋषि-मुनि, मेरी प्यारी माता अध्ययनशील रहती, दर्शनों का अध्ययन करने वाली, काम-वासना और वासना में परणित न होने वाली, कर्त्तव्य का पालन करना, ब्रह्मचर्य पर बल देना यह माताओं का विशेषकर एक प्रमुख विचार रहता था। **विचार के साथ कर्त्तव्य का पालन करना।** सुन्दर सन्तान और पुत्र को जन्म देना उनका एक लक्ष्य रहता था जिससे बलिष्ठ ब्रह्मचारी और ओजस्वी बालक जब माता के गर्भ से जन्म लेता तो माता सौभाग्यवती बन जाती है। माता एक महिमामय बन जाती है। माता का विचार उच्चता में परणित हो जाता है। उस समय यह राष्ट्र यह समाज अपने-अपने अधिकार की वेदी पर रमण करता हुआ राष्ट्र और समाज दोनों बनते हैं।

मैंने कई काल में प्रकट करते हुए कहा है कि राजा के राष्ट्र में अहः! इस समाज में राष्ट्र की आवश्यकता कोई नहीं होती। कोई

आवश्यकता नहीं है जब मेरी प्यारी माता अपने कर्त्तव्य का पालन करती है मानव अपने कर्त्तव्यवादी बन जाते हैं। प्रत्येक मानव अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, इस समय राष्ट्र के शासक की आवश्यकता नहीं होती। वह समाज बड़ा महान् होता है, पवित्र होता है, उद्गमता में परणित होता है। अपने-अपने कार्यों में रत्त रहने वाला समाज होता है। उस समाज में राष्ट्र की और शासक की आवश्यकता नहीं होती। शासक वहाँ होता है जहाँ निर्बुद्धि प्राणी होते हैं। जहाँ अकर्त्तव्य का पालन करने वाले प्राणी होते हैं। वहाँ जहाँ दुराचारी व्यक्ति हो जाते हैं उनके लिए नियम बनाए जाते हैं। संयम बनाया जाता है। अहा! उनके लिए जो संयमी पुरुष होते हैं अपने मन पर संयम करने वाले होते हैं उनको राष्ट्र की आवश्यकता नहीं होती। उनको राजा की आवश्यकता नहीं होती। राजा स्वयं उनके चरणों में ओत-प्रोत हो जाते हैं। परन्तु जो मन के ऊपर संयम करने वाला होता है, प्रवृत्तियों के ऊपर अनुशासन करने वाला होता है स्वयं अपने शरीर रूपी राष्ट्र को ऊँचा बनाने वाला व्यक्ति होता है राजा स्वयं उसके चरणों में ओत-प्रोत हो जाते हैं उनको राष्ट्र की आवश्यकता नहीं होती। बेटा! इसीलिये आजका हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है कि हम स्वयं अपने जीवन को कितना ऊँचा और महान् बनाना चाहते हैं।

प्रभु से विनय

बेटा! देखो, कल मेरे प्यारे महानन्द जी के हृदय में कितनी दाह थी, कितना एक विचार का प्रवाह चल रहा था कि समाज को एकाग्र किया जाए। समाज को एकाग्र बनाने का प्रयास किया जाए। ऐसा इनका विचार था परन्तु इनका विचार बड़ा सुन्दर, सुशील और महान् था। जिसकी महत्ता मानव के मस्तिष्कों में सदैव परणित रहनी चाहिए। रहा यह वाक्य कटुता से समाज ऊँचा बना करता है। कटुता से न धर्म परिवर्तित होता है। उनके विचारों में स्वयं ऐसा प्रतीत होने लगता

है कि तू मानव था, अमानव बन गया है। जब स्वयं सत्य की ओर आने लगता है तो प्रायः समाज ऊँचा बन जाता है। यहाँ तो सत्यवादी पुरुषों की आवश्यकता रहती है। जैसा महानन्द जी ने मुझे उच्चारण किया है, आधुनिक काल का समाज इस प्रकार का है **हे प्रभु! यहाँ भगवान् राम जैसी आत्माओं को जन्म दो।** जो मर्यादा को स्थापित करते हुए, पालन करते हुए समाज को मर्यादावादी बनाते चले जाएँ। हे प्रभु! हे देव! हे सच्चिदानन्द! हे सर्वत्र! हे अखण्ड तू सदैव रहने वाले प्रभु! तू भगवान राम जैसी पवित्र आत्माओं को जन्म दे। **और माता कौशल्या जैसी माताओं को जन्म दे।** हे प्रभु! इस संसार में जब यह समाज ऊँचा बनेगा। ऐसे नहीं बनेगा जैसे मेरे प्यारे महानन्द जी अपने वाक्यों को विचार-विनिमय करके वायु में अपने सूक्ष्म शरीर को लेकर के लय हो जाते हैं। ऐसे समाज ऊँचा नहीं बना करता है। बेटा! राष्ट्र और समाज उस काल में महान् होते हैं जब महान् व्यक्ति होते हैं समाज में तब यह प्रायः संसार ऊँचा बनता चला जाता है।

अधिकार-अनाधिकार

सबसे प्रथम संसार में यह आवश्यकता होती है, अधिकार, अनाधिकार के ऊपर विचार-विनिमय होना ही चाहिए। क्योंकि जब अधिकार और अनाधिकार के ऊपर विचार-विनिमय किया जाता है, तो राष्ट्र और समाज दोनों ऊँचे होते हैं। हमारे यहाँ परम्परा में जो अपने शिक्षार्थी को शिक्षा प्रदान की जाती थी, मुझे स्मरण आता रहता है, मुझे भी परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से कई स्थानों में, कई राजाओं में शिक्षा देने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। एक समय महाराज सुमन के यहाँ यह चर्चा आई कि हमारे यहाँ देखो शिक्षार्थी कौन होना चाहिए? बेटा! मुझे वह समय और काल स्मरण आता रहता है, **सुमन राजा के यहाँ शिक्षा देने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा।** सबसे प्रथम आयुर्वेद का पंडित बनना चाहिए। क्योंकि आयुर्वेद में इस

प्रकार की विद्या आती है जो मानव के, ब्रह्मचारी के मस्तिष्कों का अध्ययन किया जाता है और मस्तिष्कों का अध्ययन करने के पश्चात् आचार्य यह जान लेता है कि यह इस विद्या का अधिकारी है, इस विद्या का अधिकारी नहीं है। आचार्य इसी विद्या को पान कराता चला जाता है। ऐसा प्रायः हमारे यहाँ प्राचीन काल में होता रहा है, प्रतीत नहीं होता कि वह समय कहा चला गया। एक समय महाराज सुमनम् नाम के राजा के तीन पुत्र थे। जो ज्येष्ठ पुत्र था उसके राष्ट्रीय, क्षत्रीय विचार नहीं थे। वह पाण्डितय विचारों वाला था। दूसरा पुत्र उनका अन्य विचारों का था और जो सबसे सूक्ष्म बालक था वह राष्ट्रीय विचारों में, धनुर्वेद की विद्या में पारंगत था। राजा सुमनम् से कहा हे सुमनम् यह तीनों तुम्हारे पुत्र भिन्न-भिन्न विचारों के हैं, तुम क्या चाहते हो? कौनसी विद्या दिलाना चाहतो हो? उन्होंने कहा प्रभु! मैं तो उन्हें धनुर्वेद की विद्या में पारंगत चाहता हूँ। उन्होंने कहा तो गुरु किसी और को चुन लिया जाए क्योंकि मैं इनको यह शिक्षा दिलाने में असमर्थ हूँ। क्यों असमर्थ हूँ? क्योंकि ये तीन प्रकार की प्रवृत्ति के हैं, इनकी प्रकृति जिस प्रकार की है जो विद्या ये चाहते हैं, वह विद्या दिलाना चाहते हो तो मैं इनका आचार्य बनने के लिए तत्पर हूँ। जब यह विचार आया तो सुमनम् ने कहा प्रभु जैसी आपकी इच्छा हो। मेरे प्यारे ऋषिवर वह काल मुझे स्मरण है तीनों पुत्रों को सुयोग्य बना दिया, तीनों पुत्र सुयोग्य बन गए। परन्तु अधिकार और अनाधिकार की चर्चा कहाँ आती है? जहाँ अधिकारी को शिक्षा प्रदान नहीं की जाती। **संसार में सबसे प्रथम धनुर्विद्या है उसके पश्चात् पाण्डित्य अभीष्ट है।** पाण्डित्य में जितना विज्ञान है और जितना कर्मकाण्ड है वह सब पाण्डित्य की दृष्टि में आ जाता है और जैसे वाणिज्य है, जितना कर्मकाण्ड है, व्यापार है, व्यवहार है वह सब उस वाणिज्य के व्यापार में आता है। तीन ही प्रकार की देखो धाराएँ होती हैं मानव की। इसी प्रकार की विचारधाराओं को ले करके संसार में अधिकार अनाधिकार के ऊपर विचार-विनिमय किया

जाता है। तो यह समाज और राष्ट्र तभी ऊँचा बना करता है। गृह के गृह पवित्र बन जाते हैं।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है। मैंने कई काल में प्रकट भी किया है आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है। जिस समय महाराजा रघु को, महाराजा दिलीप जी ने राजा रघु को जब वशिष्ठ आश्रम में प्रविष्ठ कराने लगे, उनका यह विचार था कि मैं अपने पुत्र को पण्डित बनाना चाहता हूँ। परन्तु महाराजा दिलीप जी जब वशिष्ठ मुनि के आश्रम में जा पहुंचे और उन्होंने कहा प्रभु! मैं अपने प्यारे पुत्र को पण्डित बनाना चाहता हूँ उस समय महाराजा दिलीप से महाराजा वशिष्ठ ने कहा कि हे भगवन्! हे दिलीप जी! इनका मस्तिष्क नहीं कहता कि यह पण्डित बन सकते हैं। इनका मस्तिष्क यही कहता है कि क्षत्रिय बनेंगे अर्थात् राष्ट्रीय विचारों में, रजोगुणी विचारों में रहेंगे। इस प्रकार का विचार इनका आज्ञा दे रहा है। इनका मस्तिष्क पुकार रहा है इन वाक्यों को, तुम क्या उच्चारण कर रहे हो। उस समय जब इस प्रकार का वाक्य आया तो महाराजा दिलीप ने कहा प्रभु! मैं आपके वाक्यों का उल्लंघन नहीं करना चाहता हूँ। जैसा आपका विचार हो। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि गुरुजन संसार में इतने ऊँचे होने चाहिएँ। जिससे ब्रह्मचारी के मस्तिष्क को, उसकी प्रवृत्ति को, प्रवृत्ति को जान करके उसको उसी प्रकार का शिक्षण देना चाहिए। जैसे वैद्यराज आयुर्वेद का पण्डित रुग्ण व्यक्ति को उसी प्रकार का औषध देता है जैसा उसका विचार है, जैसे उसकी प्रवृत्ति है। यदि उसकी पित्त प्रवृत्ति है, और वायु प्रवृत्ति की औषध प्रदान कर दी है तो देखो! उसका शरीर और रुग्ण हो जाएगा। परन्तु उसे तो पित्त प्रवृत्ति को शान्त करने की औषध देनी है तभी वह रोग समाप्त होगा अन्यथा हो नहीं पाएगा। अहा! जहाँ वायु है वहाँ पित्त प्रवृत्ति की औषध प्रदान की जाती है। तो वहाँ भी देखो! वायु को शान्त करने की औषध देनी चाहिए। इसी प्रकार वह अधिकार

अनाधिकार की वार्ता आती है। इस प्रकार का हमारा विचार परम्परा से रहता है।

एक समय मुझे स्मरण है महर्षि भारद्वाज आश्रम में महर्षि दालभ्य जी जा पहुँचे और जब दोनों का विचार-विनिमय होने लगा तो दालभ्य जी ने कहा था महर्षि भारद्वाज से कि महाराज मैं इन विचारों को जानना चाहता हूँ। क्या आप विज्ञान को नहीं जानते हैं? क्या आप सूर्यमण्डल में जाने की प्रक्रिया नहीं जानते? क्या आप चन्द्रमा में जाने वाले यन्त्रों का निर्माण नहीं कर सकते? क्या मंगल में जाने वाले यन्त्रों का निर्माण नहीं कर सकते? उस समय दालभ्य से महर्षि भारद्वाज ने कहा था कि हे भगवन्! तुम यह जानकर के क्या करोगे? उन्होंने कहा प्रभु! हम भी चन्द्रमा की यात्रा करेंगे। तुम सबसे पहले अपने आत्मवेत्ता को क्यों नहीं जानते? जिसमें चन्द्र-मण्डल आदि सब समाहित हो जाते हैं, आज इस विज्ञान को जानने का प्रयास करो, महर्षि भारद्वाज ने कहा मैं उस विद्या को जानता हूँ परन्तु उस विद्या को मैं तुमसे प्रकट नहीं करना चाहता हूँ क्योंकि तुम पण्डित हो। अहा! आज मैं तुम्हें दे सकता हूँ वह जो विद्या है चन्द्रमा में जाने वाली है, बुद्ध और शुक्र में जाने वाली है, लोक-लोकान्तरों में रमण करने वाला जो यन्त्र है, धातु है आज मैं पुनः उनका ज्ञान कराता हूँ परन्तु उन्हें ले करके करोगे क्या? मैं तो यह चाहता हूँ हे दालभ्य जी! तुम ब्रह्मवेत्ता बनो। ब्रह्मवेत्ता बन करके ब्रह्म की जो प्रतिभा है, जिस प्रतिभा में सर्वत्र लोक-लोकान्तर समाहित रहते हैं, तुम्हारे सूक्ष्म से पिण्ड में भी वहाँ संसार ओत-प्रोत रहता है। तुम अपने पिण्ड रूपी ब्रह्माण्ड को जानने का प्रयत्न करो। परन्तु यह ब्रह्म को जानने से जाना जा सकेगा। इससे चन्द्रमा तुम्हारे निकट आ जाएगा। सूर्य तुम्हारे निकट आ जाता है। तुम्हारे अन्तरात्मा का इतना प्रकाश है कि उसके समान सहस्रों सूर्यों का प्रकाश भी नहीं होता। इतना आज तुम देखो, उसे जान करके क्या करोगे? महात्मा दालभ्य ने कहा कि मेरे विचार में तो यह वाक्य भगवन् यथार्थता में परणित हो गया है। आज मैं इसका अनुमोदन करने वाला हूँ। मेरा

विचार तो यह परम्परा से रहा है अथवा एक महान् विज्ञान की धारा में जा करके ही क्या करेंगे। जब इस प्रकार का विचार मुनिवरो! देखो, ऋषि-मुनियों का रहा है तो उन्होंने अपने विचारों में एक महत्ता का दिग्दर्शन दिया। जिससे उनके विचारों में एक महत्ता की ज्योति जागृत हो गई। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह कि **महर्षि भारद्वाज ज्ञान और विज्ञान दोनों के पारगंत थे।** महर्षि भारद्वाज, महाराजा शिव और आदि ब्रह्मा भी इस विज्ञान के शिरोमणि रहे हैं। जिन्होंने ब्रह्मास्त्रों और शिवास्त्रों का निर्माण किया। परम्परा से उनके नामोच्चारण उसी काल से चले आ रहे हैं तथा प्रचलित हैं। आज हम उन वाक्यों पर विचार-विनिमय करने का प्रयास करें। महर्षि भारद्वाज ने कहा कि आज मैं चन्द्रमा की यात्रा-यन्त्रों के द्वारा प्रकृति के धातु और उनके परमाणुओं को भी जान करके यन्त्रों का निर्माण कर सकता हूँ, अपना शारीरिक, मानसिक संकल्प भी इस प्रकार का बन सकता है। इसी प्रकार आज हमें विचार-विनिमय करना है। हम विज्ञान की धारा को जानने का भी प्रयास करें। परन्तु **अपनी मानवता और अपनी विचारधारा को आत्मवेत्ता बनाने वाली जो धारा है उसे कदापि अपने से दूर न करें।** महर्षि भारद्वाज ने दालभ्य से कहा था हे दालभ्य जी! संसार में जब भौतिक विज्ञान बाह्य रंग रूप धारण कर लेता है उस समय मानव में नास्तिकवाद का प्रसार हो जाता है। नास्तिकवाद का जहाँ प्रसार हो जाता है वहाँ विडम्बना होती है। जहाँ विडम्बना होती है वहाँ अन्धकार होता है। जहाँ अन्धकार होता है, हे दालभ्य जी वहाँ मृत्यु होती है। इसीलिए आज हमें विचारना है। हमें मृत्यु को नहीं उच्चारण करना है। मृत्यु को आह्वान नहीं करना है।

भौतिक विज्ञान का परिणाम

जब भौतिक विज्ञान पराकाष्ठा पर जाता है दालभ्य जी उस काल में मानव का अन्तःकरण अभिमान से परणित हो जाता है, अभिमान उसके मस्तिष्क में प्रायः आ जाता है और जहाँ अभिमान होता है वहाँ रात्रि होती है, अन्धकार होता है, विडम्बना होती है और देखो

रक्त में उत्तेजना होती है वहीं मानव का जीवन मृत्यु का कारण बनता चला जाता है। इसलिए आज मैं इस विद्या को तुम्हें देना नहीं चाहता हूँ। इस विद्या का मैं केवल आन्तरिक रूप ही धारण कराना चाहता हूँ बाह्य अंग बनाना नहीं चाहता। जब तक संसार में कर्त्तव्य की वेदी है, तब तक इसको बाह्य रूप देने का हमारा कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। आज हम इस विद्या को दे सकते हैं संसार को, परन्तु यह संसार में अनाधिकार तथा अधिकार पर विचार होता रहेगा। इस प्रकार का विचार मैं देना नहीं चाहता हूँ। वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या है? हम यह अपने जीवन में विचार-विनिमय करते चले जाएँ कि **संसार में कर्त्तव्यवाद प्रथम है और यह भौतिकवाद विज्ञान उसके पश्चात् है। आत्मवेत्ता बनना यहाँ सबसे प्रथम माना गया है।** ऋषि-मुनियों ने यह कहा है। एक मानव चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है। एक मानव नाना प्रकार के अग्नि अस्त्रों का निर्माण कर रहा है, क्यों कर रहा है? अग्नि अस्त्रों का, ब्रह्म अस्त्रों का निर्माण क्यों कर रहा है? शिवा अस्त्र क्यों बना रहा है? और वरुणास्त्रों का निर्माण क्यों कर रहा है? वह इसलिए कर रहा है कि तेरे राष्ट्र की सुरक्षा हो जाए, परन्तु उस राष्ट्र की रक्षा कदापि नहीं हुआ करती। क्यों नहीं होती? उसका मूल कारण क्या है? क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में जितने अस्त्र-शस्त्र होगे, परमाणुवाद की विद्या होगी उतना उस राष्ट्र में अभिमान होगा और जब अभिमान होगा तो उसी प्रकार की विडम्बना होगी और वह अभिमान जो होता है वह मानवीय समाज के सुकृत हो हनन कर लेता है। राष्ट्र के राष्ट्र को हनन कर लेता है उस राजा के राष्ट्र में नाना प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न होती रहती है और क्रान्तियों का अभिप्राय यह कि एक समय वह आता है कि वही राष्ट्र अग्नि के मुख में परणित हो जाता है।

मुझे वह समय, वह काल स्मरण आता रहता है जब यहाँ राजा रावण की प्रतिभा थी, पताका थी, उनका विज्ञान था। इस संसार में

इतना विशाल विज्ञान था, चन्द्रमा में जाने वाले यन्त्र, बुध में जाने वाले यन्त्र, अग्नि अस्त्र और जलास्त्र तथा नाना प्रकार के यन्त्र थे। कैसा विशाल यन्त्र था, मुझे वह यन्त्र आज तक स्मरण आता रहता है जिस समय सँग्राम होने लगा राम का और रावण का, उस समय रावण के पुत्र मेघनाद ने एक **सौममुक** नाम के यन्त्र का प्रहार किया, नीचे जल ही जल हो गया और ऊपर से अग्नि की वर्षा हो रही है, सर्वस्व सेना जल मग्न हो गई, अग्नि के प्रवाह, अग्नि के रूपों में भस्म होने लगी। उस समय देखो! भगवान् राम क्योंकि महर्षि भारद्वाज ने उन्हें एक अस्त्र दिया था जो **जलास्त्र** कहलाता था, महाराजा भारद्वाज ने जिसका निर्माण किया था, भगवान् राम ने उस अस्त्र का प्रहार किया तो अग्नि का अस्त्र अपने में शोषण कर गया और जल को भी शोषण कर गया। जल अकुंचन शक्ति उस यन्त्र में अधिक होने के नाते जल और अग्नि दोनों शान्त हो गए और सेना की रक्षा हो गई। इस प्रकार के अस्त्र-शस्त्र प्रायः संसार में रहे हैं।

हमारे यहाँ भारद्वाज जैसा वैज्ञानिक उस काल में भी नहीं था। परन्तु जिनकी निष्ठा जिनका केवल अनुसन्धान ही कार्य था। नित्यप्रति वह योगाभ्यास करते, उनका एक कर्म था अपने जीवन का। सबसे प्रथम वह प्रातःकाल में अपने आसन को त्यागते, रात्रिकाल में जब भी निद्रा से उठ जाते थे, निद्रा से दूर होते ही उसी काल में गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करते थे। चिन्तन करते थे उनकी धातुओं को जानना उनका कर्त्तव्य था। प्रातःकाल होता अपने कार्यों से निवृत हो करके उसके पश्चात् उनका ब्रह्मयज्ञ चलता था। ब्रह्म-यज्ञ के पश्चात् देवयज्ञ करते थे, देवयज्ञ के पश्चात् भोजन इत्यादियों का पान करने के पश्चात् उनकी एक अनुसन्धानशाला थी, विचारकशाला थी, उसमें परमाणुवाद का निरीक्षण करते थे। यन्त्र बनाते, यन्त्रों का निर्माण चलता रहता था। **वे सर्वयंत्र महाराज भारद्वाज ने भगवान् राम को अर्पित कर दिए थे। जब रावण से सँग्राम हुआ था उनका।**

राजा रावण के यहाँ भी विशाल यन्त्र थे। क्योंकि रावण को भी इस विद्या को महर्षि भारद्वाज ने ही शिक्षा प्रदान की थी वह शिक्षा, उसके पश्चात् रावण ने कुछ महर्षि सोममुक से प्राप्त की थी। इसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्मा से भी यह शिक्षा ग्रहण की थी। अहा! रावण ने इस विद्या को ले करके अपने राष्ट्र में विज्ञान का प्रसार किया। अपने पुत्रों को वैज्ञानिक बनाया और अपने विधाता कुम्भकरण को वैज्ञानिक बना दिया।

कुम्भकरण का जीवन

हमारे यहाँ ऐसा कहा जाता है जो मेरे प्यारे महानन्द जी ने कई काल में वर्णन कराया कि आधुनिक काल में उनके प्रति एक प्रचलित वार्ता है कि कुम्भकरण छः माह तक निद्रा में तल्लीन हो जाते थे और छः माह वह जागरुक रहते थे, ऐसा कहा जाता है परन्तु मुझे ऐसा दृष्टिपात कराया गया था कि महाराज कुम्भकरण अपनी पर्वतों पर अनुसन्धानशाला में छः मास के लिए चले जाते थे। छः मास में वह अपनी रात्रि के रूपों में अपने को स्वीकार करते थे, मैं राष्ट्र में नहीं हूँ, संसार में नहीं हूँ, मेरा कर्त्तव्य है कि अपने अनुसन्धानशाला में विराजमान रहूँ। इतना विज्ञान उनके द्वारा था। मेघनाद को भी उन्होंने शिक्षा प्रदान की थी। कुम्भकरण जैसा वैज्ञानिक जिनका छः मास तक का अभ्यास था वह संसार की वस्तुओं में लोलुप नहीं होते थे। अहा! ऐसा उनका जीवन रहता था। वह राष्ट्र में आते तो रावण की विज्ञानशालाओं में उनके वैज्ञानिको को शिक्षा देते। इस प्रकार उनका जीवन छः मास के लिए लुप्त रहता था। छः मास के लिए उनका जीवन संसार में, राष्ट्र में रहते थे। राष्ट्रीयकरण पर विचार-विनिमय होता रहता था। इस प्रकार का विज्ञान हमारे यहाँ प्रायः रहा है।

आज यह वैज्ञानिकों का और आत्मवेत्ताओं, दोनों का एक स्वरूप बनना चाहिए। जैसे कोई ब्रह्मवेत्ता है आज किसी ऋचा को जानना है,

दर्शनों में ऋचा का वर्णन आता है। ऋचा का विचारक जो पुरुष होता है, एकान्त स्थान में चला जाता है, भयकंर वनों में चला जाता है, अपने में ऋचा को अर्पित कर देता है, समर्पित कर देता है। वह ऋचा को जानते, एक-एक ऋषि को बेटा! लगभग एक सौ और सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गए हैं। अहा! वह अपने को यही नहीं जान पाए कि मैं जगत् में हूँ, संसार में हूँ, कहाँ हूँ? वह अपने को यह अनुभव कर लेते हैं कि मैं तो चेतना में हूँ। मेरी तो चेतना ही भिन्न है। इसी प्रकार जो वैज्ञानिक होते हैं एक-एक वस्तु पर, एक-एक परमाणु पर, उन परमाणुओं में जो धाराएँ होती हैं। अहा! बेटा, मुझे वह समय और काल जब स्मरण आता है, मैं कहा करता हूँ कि वास्तव में वह समाज, वह काल किस प्रकार का था? मुनिवरो! देखो वह काल मुझे स्मरण है, वह एक-एक वैज्ञानिक कैसे छः मास तक लुप्त हो जाता था और उस पर अनुसन्धान करता हुआ नाना प्रकार के परमाणु अस्त्रों का निर्माण करने वाला बनता था। इस प्रकार की धारा उनकी प्रायः रही है।

'ब्रह्म लोक प्रवः' राजा रावण के राष्ट्र में कितना विज्ञान था? परन्तु वह विज्ञान का बना क्या? उच्चारण करने का अभिप्राय यह अन्त में कि बना क्या? उसका बना यह कि लंका का विनाश हो गया। उसका बना यह कि परिवार नष्ट हो गया उसका बना यह कि मानवता, अमानवता में परिवर्तित हो गई। देखो उसका यही बनता है, मैं तो यह कहा करता हूँ कि आध्यात्मिकवाद संसार में अधिक होना चाहिए, धार्मिकवाद अधिक होना चाहिए। मुझे स्मरण आता रहता है अहा! वह काल, महाराजा कुम्भकरण का एक यन्त्र था, जिसको **चित्राग्नि** यन्त्र कहा करते थे। वह चित्राग्नि यन्त्र इस प्रकार का था कि वह सर्वस्त्र जितने भी इस पृथ्वी पर लोक हैं परन्तु लोकों में जो-जो यन्त्रों के केन्द्र से सम्बन्धित चित्राग्नि उसमें सार जितने प्रतिबन्धित होते थे उस यन्त्र में साफ-साफ केन्द्रों के चित्र आते रहते थे। महाराजा कुम्भकरण ने विज्ञान को लगभग 100 वर्षों तक जाना। 100 वर्ष की आयु तक

उन्होंने उस पर अनुसन्धान किया। परन्तु जितने भू-मण्डल पर राष्ट्र थे, सबके केन्द्रो का उनमें चित्रण आता तो संसार के सब वैज्ञानिक दृष्टिपात करने के लिए पहुँचे। **हमारे यहाँ कुम्भकरण को सबसे अधिक वैज्ञानिक माना गया है।** कुम्भकरण एक समय हिमालय कन्दराओं में चले गए। हिमालय की कन्दराओं में उन्होंने महर्षि भुँजु महाराज से शिक्षा प्राप्त की। क्योंकि भुँजु महाराज वायु मुनि महाराज के 15000 वें प्रपौत्र कहलाते थे। भुंजु ऋषि महाराज के यहाँ पहुंचे और उनके द्वारा जा करके उन्होंने कहा प्रभु! मैं तो आपकी शरण में आया हूँ। उन्होंने कहा कि क्या चाहते हो ब्रह्मपुत्र! उन्होंने कहा कि मैं विज्ञान चाहता हूँ। मैं अपने मस्तिष्क में विज्ञान की प्रतिभा चाहता हूँ। उन्होंने कहा तुम विज्ञान के अधिकारी हो अथवा नहीं। उन्होंने कहा कि यह मेरे मस्तिष्क को अध्ययन करिए। भुंजु ऋषि ने उनके मस्तिष्क का अध्ययन किया। उन्होने कहा तुम अधिकारी हो और उन्होंने शिक्षा प्रदान की। उन्होंने नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण, नाना प्रकार के धातु, अणु, महाअणुओं का निर्देशन कराया। उनका दिग्दर्शन कराया और निर्देशन दिया, तुम अपने विचारों में सुन्दर और प्रतिभा लिप्त हो जाओ। तो वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि कुम्भकरण इस विद्या का इतना अधिकारी भी था। **कुम्भकरण ने सबसे प्रथम रावण को कहा था कि राम से तुम संग्राम मत करो, राम से संग्राम करने से तुम्हें लाभ नहीं होगा।** यह कुम्भकरण की शिक्षा थी। परन्तु रावण क्योंकि अधिकारी नहीं था, राष्ट्र का अधिकारी न था।

समाज व राष्ट्र का विनाश

समाज का, राष्ट्र का विनाश किस काल में होता है? जब मेरी पुत्रियों का शृंगार भ्रष्ट किया जाता है। उस काल में राजा के राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं। सबसे प्रथम रावण ने माता के चरित्र को कुदृष्टिपात करना चाहा। उसका परिणाम यह हुआ कि माता सीता तो अडिग रहीं। उनका जीवन भ्रष्ट न हो सका। इतना वैज्ञानिक, इतना महान् राजा

था परन्तु माता सीता की वेदना ने रावण के परिवार को नष्ट कर दिया। राष्ट्र को अग्नि के मुख में परणित कर दिया। तो वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा क्या है? यह तो साहित्य है, मैं कहाँ तक प्रकट करता रहूँगा। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि उस काल में राजा का विनाश होता है जब मेरी पुत्रियों के शृंगार को भ्रष्ट करने वाला राष्ट्र बन जाता है। उस काल में प्रजा में अशुद्ध क्रान्ति आने के कारण वह अपनी अग्नि के मुख में स्वतः राजा चला जाता है। **इसी प्रकार सबसे प्रथम कुम्भकरण ने यह कहा था रावण से, हे रावण!, हे विधाता! यह तुमने क्या किया? तुम माता सीता का हरण कर लाए, यह तुम्हारा कार्य नहीं था।** यह राजाओं का कर्त्तव्य नहीं होता है। यदि मुझे यह विचार होता राष्ट्र का तो मैं अस्त्रों-शस्त्रों से रावण तुम्हें नष्ट कर देता। परन्तु जब यह वाक्य कहा तो रावण ने कहा तुम महान् कायर हो। मेरे विधाता नहीं हो। अहा! उन्होंने यही वाक्य जाना कि मैं क्या करूं? मैं विधाता के साथ हूँ तो विचार क्या? विचार यह कि राजा रावण के राष्ट्र में इस प्रकार की धारा रही। विज्ञान का अभिमान रावण को स्वतः संसार से नष्ट कराता चला गया। परिवार नष्ट हो गया, मेरी पुत्रियाँ निर्तति बन गई। अहा! सब कुछ समाप्त हो गया। इस प्रकार देखो वह काल बन जाता है। वह राष्ट्र की विज्ञानशाला, परमाणुशाला, सुन्दर-सुन्दर शालाएं उस राष्ट्र में केवल एक माताओं के जीवन को ऊँचा न बनाने का परिणाम यह है कि वह राष्ट्र श्मशान भूमि बन जाता है। राष्ट्र केवल सदाचार की भूमि न रह करके वह दुराचार की भूमि बन जाता है, इसलिए इन वाक्यों पर बेटा! विचार-विनिमय करना चाहिए प्रत्येक मानव को।

आज का बेटा! वाक्य हमारा क्या कह रहा है? आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय क्या कि संसार में विज्ञान होना चाहिए और बहुत अधिक होना चाहिए परन्तु मैं यह कहा करता हूँ कि आध्यात्मिकवाद होना चाहिए। आध्यात्मिकवाद में माता को माता की दृष्टि से पान

किया जाता है, भोजाई को भोजाई की दृष्टि से परन्तु जब परमाणुवाद आ जाता है, प्रकृतिवाद आ जाता है, अभिमान आ जाता है और वह राष्ट्र को, समाज को और मानव को नष्ट करने वाला होता है। बेटा! इसीलिए आज का हमारा वाक्य अब यह समाप्त होने जा रहा है।

आज के इन वाक्यों का अभिप्राय क्या कि **हम अपने जीवन को ऊँचा बनाएँ, इतना ऊँचा बनाएँ कि हम अपने मानवत्व को इस राष्ट्र से ऊँचा बनाते चले जाए।** राष्ट्र जो होता है वह सदाचारियों के लिए नहीं होता, नियमबद्ध व्यक्तियों के लिए नहीं होता। वह उनके लिए होता है जो अनुशासन की हीनता करते हैं और अनुशासनहीन जो व्यक्ति होते हैं उनके लिए राष्ट्र का निर्माण होता है सदाचार की धारा होती है, पवित्रवाद होता है, इसलिए उनके लिए सर्वज्ञ होता है। आज का वाक्य बेटा! अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। आज का वाक्य समाप्त, अब वेदो का पाठ होगा। इसके पश्चात् हमारी वार्ता समाप्त हो जाएगी।

धन्य हो भगवन्! आज तो आपका वाक्य हमें भी बहुत प्रिय लगा। हास्य!

वेद पाठ।

अच्छा भगवन्!

आनन्द मंगलाचार!

शान्तिः

दिनाँक : 2 अगस्त, 1970
स्थान : महाशय कृष्ण हाल
जोर बाग, नई दिल्ली

।। ओ३म् ।।

दीक्षा

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण किया। क्योंकि हमारे यहाँ वेद-मन्त्रों की उस पवित्र आभा में सर्वत्र संसार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। क्योंकि ज्ञान उसे कहा जाता है जो मानव दृष्टिपात करता रहता है और विज्ञान वह माना गया है जिसको हम क्रियात्मक रूप में लाने का प्रयास करते हैं और उसे क्रिया में लाने के पश्चात् उसका साक्षात्कार करने लगते हैं। **वह जो साक्षात्कार है उसी का नाम विज्ञान माना गया है।** जिस प्रकार एक मानव यह दृष्टिपात कर रहा है कि तेरे द्वारा मन है, चक्षु हैं, सर्वत्र इन्द्रियाँ दृष्टिपात आती हैं। परन्तु इन इन्द्रियों का साक्षात्कार करना उसे कहा जाता है जिस इन्द्रिय के स्वरूप को हम अच्छी प्रकार जान लेते हैं। जिसका स्वरूप हमारे समीप आ जाता है और उसी स्वरूप के आधार पर है हम संसार को क्रियात्मक रूप में लाते हैं। तो बेटा! उसका नाम विज्ञान कहा जाता है।

आत्मा और परमाणुवाद

एक मानव चन्द्रमा के दर्शन कर रहा है, सूर्य के दर्शनों को कर रहा है जो लाखों योजन की दूरी पर रहने वाला है पृथ्वी मण्डल से और भी नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों का दिग्दर्शन कर रहा है। उसको क्रिया में लाने का प्रयास कर रहा है, यन्त्र बना रहा है किरणों के आधार पर अपनी मनोभावना को, मन को, शरीर को तपा रहा है।

तपाने के पश्चात् एक योगी बनकर के सूर्य की आभा और किरणों के साथ-साथ वह सूर्य-मण्डल को अपने में साक्षात कर लेता है। चन्द्रमा को भी इसी प्रकार, मंगल को भी इसी प्रकार जो साक्षात् कर लेता हैं यन्त्रों के द्वारा अथवा आत्मा की क्रिया के द्वारा। क्योंकि इनके भी नाना प्रकार के भेदन हमारे यहाँ माने गये हैं। विज्ञान के भी नाना प्रकार के भेदनों में आध्यात्मिक विज्ञान और भी महत्त्वपूर्ण होता है। भौतिक विज्ञान महत्त्वदायक होता है।

इनका भिन्न-भिन्न स्वरूप हमारे समीप आ जाता है। जब हम विज्ञान के आधार पर अपने जीवन को निर्धारित कर लेते हैं अथवा दोनों प्रकार का पक्ष हमारे समीप होता है अर्थात् एक पक्ष आत्मा का है दूसरा पक्ष विज्ञान के परमाणुवाद का माना गया है। परन्तु दोनों में एक ही भिन्नता मानी गई है, कि जहाँ परमाणुवाद का अन्त करने का प्रश्न आता है वहाँ से आध्यात्मिक विज्ञान, आत्मा का साक्षात्कार प्रारम्भ हो जाता है। हमें इन दोनों प्रक्रियाओं को विचार-विनिमय करना है। ज्ञान और विज्ञान के उस आधार पर अपने जीवन को बनाना है। क्योंकि संसार में यह जितना भी जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है तथा मानव किसी भी लोक-लोकान्तरों में विचरण करने वाला प्राणी क्यों न हो पृथ्वी-मण्डल का ही नहीं, मंगल का भी क्यों न हों, परन्तु प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या का जो जीवन है वह आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद, परमाणुवादों से गुथा हुआ माना गया है। अब इन दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं को जानना एक हमारा मौलिक कर्त्तव्य कहलाया गया है। क्योंकि मानव अपने संक्षिप्त विचारों में संलग्न रहता है। अपनी उन महान सूक्ष्म-सूक्ष्म मान और अपमान की प्रक्रियाओं में संलग्न रहता है। परन्तु जब हम यह विचारते हैं कि हमारा जो मान अपमान में आ जाने पर हमारा जीवन कोई सुन्दर नही रहता है। हमारा मानव जीवन उस काल में सुन्दर बनता है जब हम ज्ञान और विज्ञान के आधार पर अपने जीवन को निर्णयात्मक रूप में लाने का प्रयास करते हैं। परन्तु अपने उस महान् ज्ञान और विज्ञान का, दोनों का साक्षात्कार

कर लेते हैं। वहीं तो मानव की एक महान् पवित्र अवस्था कहलाई गई है।

दीक्षा क्या है?

आज का हमारा वेद-मन्त्र केवल ज्ञान और विज्ञान की ही चर्चा नहीं कर रहा था। आज का वेद का पठन-पाठन दीक्षा के सम्बन्ध में एक ऊँचा आदर्श हमें प्रगट करा रहा था। मानव को 'दीक्षा व्याचनोति'', बनना चाहिए। मानव को दीक्षा लेनी चाहिए। जब मानव दीक्षा लेता है, दीक्षान्त अपने जीवन को बना लेता है उस मानवता में एक महत्ता का दर्शन होता है। उसकी इन्द्रियाँ उसके मनोभाव नग्न नहीं रहते। मुझे नाना प्रकार की वार्ताएँ स्मरण आने लगती हैं। मैंने इससे पूर्व काल में भी दीक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार दिए थे आज भी हमारे समीप वे विचार आ गए हैं। **दीक्षा क्या है?** एक ब्रह्मचारी अपने गुरु के कुल से पृथक होता है मानो दीक्षा लेकर ही पृथक होता है। क्योंकि उसके पूर्व उसे दीक्षा नहीं प्राप्त हुई। जब वह 'दीक्षा व्याप्रोति', दीक्षा को अपना करके इस संसार के क्षेत्र में आ जाता है और दीक्षा को अपनाने के पश्चात् उस मानवता की विचार धारा में एक महत्ता का दिग्दर्शन होने लगता है। क्योंकि अपने को यह स्वीकार करता है कि मैंने दीक्षा स्वीकार कर ली है। अब मैं दीक्षित बन गया हूँ। दीक्षा को अपनाने के पश्चात् ब्रह्मचारी में अपने को आचार्य उच्चारण करने का साहस हो जाता है। यदि इसको दीक्षा प्राप्त नहीं होती तो आचार्य नहीं बन पाता था। इसी प्रकार पति और पत्नी गृह-आश्रम में जब प्रविष्ट होते हैं तो आचार्य से वे दोनों दीक्षा ले लेते हैं। परन्तु दीक्षा के पश्चात् वह पति और पत्नी कहलाते हैं। अपना वाक्य अपने-अपने समीप उच्चारण करने में उन्हें गौरव होता है। जब तक दीक्षा नहीं होती तब तक मानव विकृत होता है। उसका कोई मूल्य नहीं होता। उसमें कोई महत्ता का दिग्दर्शन नहीं होता। वह दीक्षा के पश्चात् जब वह अपनी धाराओं को लेकर के संसार क्षेत्र में आता

है तो वह एक महत्ता की वेदी पर अपने जीवन को व्यतीत करने लगता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! इसी प्रकार वानप्रस्थ है उसमें भी दीक्षा ली जाती है। उसके पश्चात् सन्यास आश्रम आता है। चारों आश्रमों में ही दीक्षा ली जाती है।

संकल्प की विवेचना

दीक्षा का रूप मैंने तुम्हारे समीप निश्चित किया था। **दीक्षा कहते हैं ज्ञान को। दीक्षा कहते हैं संकल्प को।** वह ज्ञान युक्त होकर के संकल्पवादी बनता है। वही तो दीक्षित कहलाया गया है। आज हमें विचार-विनिमय करना है कि आज हम मानो अपने जीवन को दीक्षित बनाना चाहते हैं। संकल्प वादी बनाना चाहते हैं। संकल्प ही तो मानव के जीवन को सुन्दर बनाता है। संकल्प के आधार पर यह जगत सर्वत्र एक प्रकार का संकल्पमात्र माना गया है। हमारे यहाँ नाना ऋषियों के वचन जब हमारे समीप आते हैं विचार आता है एक माता है, उसका पुत्र है, माता और पिता का दोनों का, माता और पुत्र दोनों का एक ही संकल्प है। मानो संकल्प मात्र से वह माता और पिता बनें हुए रहते हैं। संकल्प के आधार पर ही पति और पत्नी का दोनों का व्यापार चला करता है। संकल्प मात्र से ही राष्ट्र और प्रजा दोनों का कार्य प्रारम्भ होता है। परन्तु संकल्पमात्र से ही गुरु और शिष्य दोनों अपने जीवन को व्यतीत करते रहते हैं। मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हमें संकल्पवादी बनना चाहिए। **दीक्षा का अभिप्राय है संकल्प।** क्योंकि संकल्प में ही सर्वत्र जगत् माना गया है। जब बेटा! इस सृष्टि का प्रारम्भ हुआ तो मेरे प्यारे प्रभु ने सृष्टि का संकल्प बनाया। इस सृष्टि में सर्वत्र एक प्रकार का संकल्प ही दृष्टिपात आ रहा है। एक परमाणु दूसरे परमाणु में मिलान करता है, एक दूसरा परमाणु एक दूसरें में अपनी क्रीड़ा प्रारम्भ कर लेता है। परन्तु उन परमाणुओं का स्वभाव भी भिन्न-भिन्न माना गया है। तो यह क्या है? सर्वत्र एक प्रभु का यह संकल्प माना गया है। क्योंकि संकल्प मात्र से ही मानव का जीवन

सुन्दर बना करता है। आचार्य और शिष्य, पति और पत्नी दोनों संकल्प वादी बनते हैं। पुत्र भी इसी प्रकार संकल्प में कटिबद्ध हो जाता है। अतः आज हमें संकल्प की महिमा को जानना चाहिए। दीक्षा का अभिप्राय भी यही होता है।

इस सम्बन्ध में परम्परा की एक वार्ता मुझे आज स्मरण आती चली जा रही है जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा पहुँचा, तो मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि प्रभु! मुझे दीक्षित बना दीजिए। उस समय पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा, हे पुत्र! अभी तुम दीक्षा के इस योग्य नहीं हुए हो, दीक्षा के योग्य हो जाओगे उस समय मैं तुम्हें दीक्षा अवश्य प्राप्त कराऊँगा। तो मेरे प्यारे पूज्यपाद गुरुदेव ने जब यह वाक्य कहा तो विचार इसी पर आता है कि दीक्षा का भी अधिकार होता है मानव को जब तक अधिकार नहीं होता तब तक दीक्षा भी मानव को प्राप्त नहीं होती। इसीलिए आज हमें विचारना चाहिए कि हमें इस योग्य बनना चाहिए। जब हम इस योग्य बन जाते हैं तो हमारा अन्तरात्मा हमें दीक्षा देने लगता है। हमारा अन्तरात्मा का बाह्य-जगत हमें दीक्षित उच्चारण करने लगता है। इसीलिए बेटा! आज हमें विचारना चाहिए। दीक्षा का अधिकार, सन्यास का अधिकार उसी मानव को होता है जो मानव अपनी इन्द्रियों को वस्त्र धारण करा देता है।

इन्द्रियों का वस्त्र

मुनिवरो! इन्द्रियों का वस्त्र क्या है? क्या धागे का वस्त्र इन्द्रियों का वस्त्र नहीं होता। विचार आता है कि इन्द्रियों का वस्त्र क्या है? जब ज्ञान-इन्द्रियाँ, कर्म इन्द्रियाँ अपने-अपने कर्त्तव्य से कर्त्तव्य रूपी वस्त्र को धारण कर लेती हैं तो उस मानव की इन्द्रियाँ नग्न नहीं रहती। इन्द्रियाँ किस की नग्न रहती हैं? वस्त्र होते हुए भी मानव नग्न रहता है और वस्त्र न रहते हुए भी मानव नग्न नहीं रहता। विचार आता है, बेटा! जिस मानव के द्वारा दीक्षा आ जाती है, **दीक्षा का अभिप्राय है 'ज्ञान और विज्ञान'।** दीक्षा का अभिप्राय है जो व्यापक रूपों से

अपने जीवन को जान लेता है। व्यापक रूपों से इस जगत को जान लेता है वह अपनी इन्द्रियों को ढांप लेता है। वस्त्रों को धारण करा देता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! एक मानव नाना प्रकार के सुन्दर-सुन्दर आभूषणों से युक्त है। नाना सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों को धारण कर रहा है। परन्तु मन की चंचलता नहीं जाती, तो जानो कि उसका मन नग्न रहता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! एक मानव अपनी सर्वस्व इन्द्रियों को वस्त्रों से आवृत करता रहता है परन्तु इन्द्रियों का जो विषय है वह उसमें चंचल हो रहा है तो जानो कि उसकी इन्द्रियाँ वस्त्र होते हुए भी नग्न की नग्न रहती हैं।

मेरे प्यारे ऋषिवर! कौन मानव संसार में नग्न नहीं रहता। जो यह विचार लेता है कि मानो पृथ्वी ही मेरा आसन है। **दिशाएँ आभूषण का अभिप्राय क्या है?** दिशाओं में जो मानव जिस प्रकार देखो इस जगत को इस संसार को दिशाएँ अपने में धारण करती रहती हैं। शब्द का वस्त्र क्या है! क्योंकि शब्द उच्चारण होते ही मुखारविन्द से शब्द बनते ही वह दिशाओं में जाता है। दिशाओं में जाकर के उसका स्वरूप बनता है। स्वरूप बन करके वह द्यु-लोक को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार हमारे यहाँ ऐसा माना गया है कि वह जो शब्द है यदि उस शब्द में कटुता है उस शब्द में कोई सार नहीं हैं। मिथ्यावादी है तो वह शब्द नग्न कहलाया गया है और जिस शब्द में क्रिया होती है जिस शब्द में ज्ञान होता है, विज्ञान होता है जो शब्द अशुद्ध परमाणुओं को निगल जाता है वही तो शब्द हमारे यहाँ ज्ञान रूपी आभूषणों से युक्त रहने वाला है।

इसी प्रकार बेटा! नेत्रों की ज्योति है। नेत्रों में कुदृष्टि जब नहीं रहती सुदृष्टि आ जाती है तो वह जो सुदृष्टि वाला वस्त्र है वही उस मानव की चक्षु इन्द्रियों को आभूषण से युक्त बनाने वाला है। मेरे प्यारे ऋषिवर! हमें स्मरण आ रहा है कि एक समय 'चाक्राणी गार्गी' से महर्षि 'स्वयंमुक' ऋषि ने कहा था हे देवी! संसार में कौन मानव नग्न रहता है? उस समय

चाक्राणी ने कहा वह मानव नग्न रहता है जिस मानव का मन सदैव चंचल रहता है। जो मानव अपनेपन में मानो अधूरापन रखता है। संकल्पवादी नहीं होता। जो मानव दीक्षित नहीं होता। वह मानव ऋषिवर! संसार में नग्न रहने वाला होता है। इसी प्रकार आज हमें विचारना चाहिए। संसार में मानव को नग्न नहीं रहना चाहिए।

नग्न की व्याख्या

नग्न की व्याख्या क्या है? हमें यह विचारना चाहिए। मुझे स्मरण है कि मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा था किसी समय में। हे पुत्रवत! तुम्हें लगभग 50 वर्ष तक वस्त्र धारण नहीं करना होगा। मुनिवरो! देखो वह साधना कितनी कठोर होती है साधक के लिए। परन्तु यहाँ वस्त्रों से 'ब्रह्मव्यापः' उस समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से एक समय कहा भगवन् मैं नग्न कैसे रह सकता हूँ। मैं क्या मानव की दृष्टि में नग्न हो जाऊँ? प्रभु की दृष्टि में नग्न हो जाऊँ? उस समय पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि संसार की दृष्टि में नग्न हो जाओ। संसार की दृष्टि में नाना प्रकार के धागों के वस्त्रों से मानव नग्न प्रतीत नहीं होता है। परन्तु वह मानव संसार की दृष्टि में नग्न दृष्टिपात आता है और जो ज्ञान रूपी आभूषण वस्त्र को अपनाता है वह प्रभु की दृष्टि में नग्न नहीं होता। वह समाज की दृष्टि में तो नग्न प्रतीत होता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! और प्रभु की दृष्टि में कौन नग्न होता है? जो प्रभु को सर्वत्र न विचार कर के निर्लज्ज हो जाता है। वह मानव सदैव नग्न रहता है। वह मानव प्रभु की दृष्टि में नग्न रहता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! और जो प्रभु को कण-कण में दृष्टिपात कर लेता है, कण-कण में प्रभु की निष्ठा हो जाती है वह मानव इस संसार की दृष्टि में प्रायः नग्न प्रतीत होता हो, परन्तु वह प्रभु की दृष्टि में नग्न नहीं होता।

हे मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हमें विचारना चाहिए क्या संसार में मानव को नग्न नहीं रहना चाहिए। मुनिवरो! प्रभु को न जानना संसार

में नग्नवत कहलाया गया है। मानव ऊपरी संसार की लज्जा को अपनाता हुआ वह नाना प्रकार के मनों में चंचल भावों को अपनाता हुआ प्रभु की दृष्टि में नग्न होता है। समाज की दृष्टि में वह ढांपा हुआ होता है। वस्त्रों से युक्त होता है। मुनिवरो! विचार आता है कि हममें ज्ञान और विवेक होना चाहिए। **जब तक हमारे द्वारा ज्ञान और विवेक नहीं होगा हमारा जीवन किसी काल में भी ऊँचा नहीं बनेगा।** अतः आज हमें ज्ञान रूपी उस महत्ता को अपनाना चाहिए, जिससे बेटा! हमारा जीवन सदैव ऊँचा बनता रहे। मेरे प्यारे ऋषिवर! संसार का वह साहित्य मुझे प्रायः स्मरण आता रहता है जहाँ बेटा! ऋषि-मुनि एकत्र विराजमान होकर के अपना विचार-विनिमय प्रारम्भ करते थे। मेरे प्यारे ऋषिवर! जब मुझे महात्मा महर्षि दधीचि की वार्ताऐं स्मरण आती है तो विचार आता है कि उनका कितना महान अखण्ड जीवन कहलाया गया है। जिनके जीवन में सदैव मानवता नृत्य करते रहती थी मानवता उन्हीं के हृदयों में होती है।

ऋषि-मुनियों की घोषणा

मेरे प्यारे ऋषिवर! ऋषि-मुनियों ने कोई ऐसे घोषणा नहीं की कि तुम आज चन्द्रमा में चले जाओ। आज मंगल में चले जाओ। नाना प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों से युक्त हो जाओ। किसी ऋषि मुनि ने कोई घोषणा नहीं की। परन्तु ऋषि-मुनि एक ही घोषणा करते थे, हे मानव! जिस गृह में तुम सदैव रमण करते हो, जिस गृह को तुम सजातीय (अपना) बनाते हो उस गृह को अच्छी प्रकार जान लो। यही तुम्हारा जीवन कहलाया गया है। आज जब हम जिस गृह में रमण करते हैं, जिस गृह में आहार करते हैं, गृह के लिए वस्त्र धारण करते हैं, परन्तु उस गृह को हम यह नहीं जानते कि गृह में क्या-क्या वस्तु है? कितना ज्ञान है? कितना विज्ञान है? कितनी धाराएँ हैं? अरे यह नहीं जानते तो ऋषि-मुनि कहते हैं कि मानव को सर्वत्र यही जानना चाहिए कि हमारे गृह में क्या है? हमें इस गृह में किस प्रकार सुकृत प्राप्त होगा।

किस प्रकार गृह में रमण करते हुए हम अपनी मानवता को सजातीय (अपनी) बना सकते हैं। यह हमारे ऋषि-मुनियों की घोषणा रही है कि इस गृह को जानने का प्रयास करो। जिस गृह में नेत्र अपने संसार को दृष्टिपात कर रहे हैं। घ्राण मन्द सुगन्ध को दृष्टिपात कर रही है। इसी प्रकार हस्त अपना कार्य कर रहे हैं। दिशाओं का देवता ''अमरुक तमभ्रम व्यापः श्रोतमहः'' श्रोत बने हुए हैं। आज हमें प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जानते हुए इनकी सामग्री बना करके, एकत्रित करके अपने हृदय को जानना चाहिए। उस महान हृदय को जानना चाहिए जिससे बेटा! देखो मानव सुन्दर बना करता है। मानवता की विचित्र धारा मानव के समीप आ जाती है।

मानव का हृदय पवित्र होना चाहिए

मेरे प्यारे ऋषिवर! मुझे स्मरण आता है कि हृदय से दुर्जन की जानकारी होती है। इसी हृदय से कृतियों की जानकारी होती है। मुझे स्मरण है एक समय द्वापर के काल में जब आचार्य कुल में द्रोणाचार्य के द्वारा महाराजा युधिष्ठिर इत्यादि जब शिक्षा ग्रहण करते थे। एक समय आचार्य ने यह जान लिया कि इनमें कौन सुन्दर है। एक समय युधिष्ठिर से कहा युधिष्ठिर! जाओ संसार में तुम अपने दुर्जन की जानकारी करो। संसार में तुम्हारे से अधिक दुर्जन कौन है? महाराज युधिष्ठिर ने संसार में भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपने राष्ट्र में दूसरे राष्ट्रों में दृष्टिपात किया। दृष्टिपात करके अपने पूज्य गुरुदेव के समीप आ गए। गुरुदेव से कहा हे ''भगवन्! संसार में मेरे से दुर्जन मुझे कोई प्राप्त नहीं होता। क्योंकि मैं एक ऐसा दुर्जन हूँ कि जिसकी मुझे अब तक जानकारी नहीं हो सकी।'' मुनिवरो! इसी प्रकार मानो महाराजा दुर्योधन से कहा। हे दुर्योधन जाओ पुत्र तुम संसार में अपने से कोई ऊँचा जानकर के आओ। तुम से संसार में ऊँचा कौन है? कौन बुद्धिमान है? उस समय दुर्योधन ने अहह! भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया जब भ्रमण करने लगे तो सर्वत्र राष्ट्र में भ्रमण करके वे गुरु

के समीप आए। गुरु ने कहा बोलो पुत्रवत्। उन्होंने कहा 'प्रभु मेरे से बुद्धिमान मुझे कोई प्रतीत नहीं हुआ।'' बेटा! अभिप्राय क्या कि संसार में जो अपने को बुद्धिमान स्वीकार करता है, बेटा! वह बुद्धिमान वास्तव में नहीं होता। परन्तु जब वह यह दृष्टिपात करता है कि मैं इतना निर्लज्ज हूँ संसार में मैं अपने को ही नहीं जान सका हूँ कि मैं क्या हूँ? मानो यह अभिमान की मेरे में नाना प्रकार की मात्रा रहती है। तब तक वहाँ दुर्जन और सज्जन की जानकारी कैसे हो सकती है? संसार में वह मानव कितना गम्भीर होता है जिस मानव के द्वारा अपने से दुर्जन संसार में कोई दृष्टिपात नहीं आ रहा।

मेरे प्यारे ऋषिवर! वे महान् व्यक्ति बना करते हैं क्या उनका धर्म और उनकी मानवता संसार में क्या बना करती है? जो मानव यह स्वीकार कर रहा है कि मैं बुद्धिमान हूँ, मानो मेरे से ऊँचा कोई जगत में है ही नहीं। मुनिवरो! वह मानव अपनी एक प्रक्रिया को भी नहीं जानता। क्योंकि ''मैं'' का जो शब्द उच्चारण होता है इतना अभिमान पूर्ण होता है उसमें प्रकृति के तत्व होते हैं। क्योंकि जितना भी मैं वाद है यह बना ही अभिमान की मात्राओं से है। इसीलिए हमें विचारना है आज हमें अपने को कितना दीक्षित बनाना है। कितना विवेकी बनाना है। विवेकी पुरुष वही होता है जिसके द्वारा बेटा! दीक्षा होती है। जो मानव इस जगत में ऊँचे भाव को अपनाता हुआ अपनी मानवता को सुन्दर बनाता है।

मैं आज कोई अधिक चर्चा तो प्रगट करने आया नहीं हूँ। केवल संक्षिप्त विचार देने आया हूँ। वह विचार क्या कि आज हम अपना जीवन ऊँचा बनाने का प्रयास करें। अपनी इन्द्रियों को सजातीय बनाने (वश में करने) का प्रयास करें। जब हम अपनी इन्द्रियों को ऊँचा बना लेते हैं, हृदय को ऊँचा बना लेते हैं तो हमारा जीवन वास्तव में पवित्रता को प्राप्त हो जाता है। हम महत्ता का दिग्-दर्शन करने लगते हैं। महान् प्रभु की ज्योति हमारे समीप आनी प्रारम्भ हो जाती है। हम वेद के

उस महान् आदेश का पालन करते हैं जो वेद हमें आज्ञा देता है हे मानव! तू मननशील बनने का प्रयास कर, ऊँचा बनने का प्रयास कर। जिससे मानव तेरी आभा जगत में आभायित होती रहे।

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं अधिक चर्चा नहीं प्रकट करूँगा। केवल वाक्य उच्चारण करके मैंने संक्षिप्त परिचय कराया है। कि आज हम दीक्षा को अपनाने का प्रयास करें। **''दीक्षा एक सँकल्प को कहा जाता है।''** जो अपने मन में संकल्प को धारण करता है वही तो संसार में ऊँचा है और सँकल्प बिना यह जगत कदापि अपनी क्रिया नहीं कर रहा है। सँकल्प मात्र से ही वायु रमण कर रहा है। सँकल्प मात्र से ही अग्नि अपने तेज में रमण कर रहा है। सँकल्प मात्र से ही जल अपने वेग में रमण कर रहा है। यह सब प्रभु का सँकल्प माना गया है। आज हमें उस सँकल्प को अपना कर अपने उस महत्ता से अपने जीवन को सुन्दर बनाने का प्रयास करना चाहिए। एक मेरी प्यारी माता है, वह सँकल्प मात्रा से ही तो माता है। उस पुत्र की माता बनी हुई है उसका जो हृदय वह माता का हृदय माना गया है। हृदय के कारण ही इसीलिए ऋषियों ने कहा कि हृदय इतना पवित्र होना चाहिए। क्योंकि जब तक मानव का हृदय पवित्र नहीं होता तब तक जीवन कदापि सुन्दर नहीं बना करता है। इसीलिए हृदय पवित्र होना चाहिए।

हृदय में मानवता का सदैव दिग्दर्शन होना चाहिए।

आज मैंने संक्षिप्त परिचय दिया कि मानव को नग्न नहीं रहना चाहिए। और कौन मानव नग्न रहता है जो अपने ज्ञान और विवेक को नहीं अपनाता। वह मानव संसार में सदैव नग्न रहता है। आज हमें ज्ञान और विज्ञान की आभाओं पर सदैव विचार-विनिमय करना चाहिए। ज्ञान क्या है? विज्ञान क्या है? जिसको अपनाने के पश्चात् हमारी आभाएँ सुन्दर बना करती हैं। जीवन में एक महत्ता की वह ज्योति हमारे समीप आ जाती है। जिसको अपना करके हम अपनेपन में ऊँचे बन जाते हैं। पवित्रता को धारण कर लेते हैं। प्रकृतिवाद को

अपने नीचे दबा लेते हैं। महत्ता के दिग्दर्शन से हमारे जीवन में एक महान ज्योति प्रगट हो जाती है। वेदा-घ्रतम' उस वेद की आभा को अपनाना हमारा कर्त्तव्य है। वेद कह रहा है आज तुम्हें प्रकाश के लिए रमण करना है, अन्धकार को त्यागना है। **अन्धकार कहते हैं अज्ञान को और ज्ञान का नाम प्रकाश माना गया है।** इस प्रकाश को अपनाने के पश्चात् हमारा जीवन पवित्रता में रमण करता हुआ मानवता की वेदी को अपनाता हुआ इस संसार-सागर से पार हो जाता है।

माँ दुर्गा

आज हमें इस सागर से पार होने का प्रयास करना है। जहाँ मान और अपमान होता है। उस सागर से पार होने के लिए विवेक रूपी नौका को अपनाना है। उस महान् माँ दुर्गा को अपनाना है। अष्ट भुजाओं वाली माँ दुर्गा को अपनाना है जिसको अपनाने के पश्चात् इस संसार-सागर से हम पार हो जाते हैं। बेटा! माँ दुर्गा कौन है। ''दुर्गम् ब्रह्म व्याप।'', जो दुर्गा है जो अष्ट भुजाओं वाली है। दुर्गा कहते हैं जो हमें दुर्गम् बनाती है, पवित्र बनाती है। **दुर्गा वह माँ जिसे मानो हम विद्या कहते हैं, सरस्वती कहते हैं।** सरस्वती नाम दुर्गा का है, वैष्णवी भी उस महान् पवित्र विद्या को कहा गया है। क्योंकि योगिनी जिसे कहते हैं योगिनी का नाम भी दुर्गा है उसके आठ अंग योग के कहलाए गए हैं। जो योग के आठ अंगों को अपनाता है वह माँ दुर्गा की आठों भुजाओं को जानने लगता है। वह जो आठों भुजाएँ हैं उनको अपनाने का मानव प्रयास करता है। आज हमें अपनी उस महान ज्योति को अपनाने का सदैव प्रयास करना है। जिस ज्योति को अपनाने के पश्चात् हम माँ दुर्गा को, माँ वैष्णवी को अपनाते उसकी आठ भुजाओं को जानने लगते हैं। क्योंकि वे आठों जो अंग योग के हैं उन्हें हमें सदैव अपनाना है। क्योंकि हम उस महान् ''एकः प्रभः योगा प्रवें।'' उस योग की आभा को अपनाते हुए हम संसार रूपी सागर से पार होने का प्रयास करें। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा मैं बेटा! शेष चर्चाए कल प्रकट करूंगा।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाने वाले बनें और अपनी उस माँ ममतामयी को अपनाने का प्रयास करें। ज्ञान और विज्ञान को जानने का प्रयास करें। सर्वत्र हमारा एक यह मौलिक कर्त्तव्य कहलाया गया है। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चा कल प्रकट करूँगा। क्योंकि आज मैंने संक्षिप्त परिचय देना था। संक्षिप्त परिचय दिया कि मानव को नग्न नहीं रहना चाहिए, विचित्र बनना चाहिए। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय तुमने जान लिया होगा। प्रायः वाक्य सूक्ष्म रहा है परन्तु संक्षिप्त परिचय दिया। कल समय मिलेगा तो अधिक चर्चाएं कल प्रकट होगीं। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

अच्छा भगवन्!

आनन्द मंगलाचार!

शान्तिः

दिनाँक : 4 अक्तूबर, 1971
समय : रात्रि 8-30 बजे
स्थान : आर्य समाज,
नया नाँगल

आवश्यक सूचना

सभी वार्षिक सदस्यों को सूचित किया जाता है कि जिन सदस्यों ने अभी तक वार्षिक सदस्यता की राशि जमा नहीं की है वह कृपया करके मनीआर्डर द्वारा समिति के कार्यालय में या प्रकाशन मन्त्री/कोषाध्यक्ष को वार्षिक सदस्यता की राशि भेज दें जिससे कि पत्रिका निरन्तर प्रेषित होती रहे।

॥ ओ३म् ॥

ऋषियों के उद्‌गार

1. महाभारत काल के पश्चात् इस संसार में अज्ञानता का प्रसार हुआ।
2. महाभारत का संग्राम अधिकार, अनाधिकार के विवेक को त्यागने से हुआ।
3. आज हम अपनी मानवता को ऊँचा बनाने का प्रयास करें।
4. समाज में आज एक महत्ता और निर्भयता को लाना चाहिए।
5. धर्म तो वायु तथा सूर्य प्रकाश के समान व्यापक रहता है।
6. सत्यवाद, मानववाद आदि जितनी भी सुन्दताएँ हैं उन सब का नाम धर्म है, अपने कर्त्तव्य का पालन करने का नाम धर्म कहा गया है।
7. वेदों का अध्ययन न करने के कारण जो अपने दार्शनिक विचारों को त्याग देता है वह मानवीय विचारधारा में रूढ़ि बन जाती है।
8. रूढ़ि विनाश का कारण है, रूढ़ि राष्ट्र को हीनता देने वाली होती है।
9. जो अग्नि धर्म की होती, वह मानवता की अग्नि होती है। वह रूढ़ि की अग्नि को शान्त कर देती है।
10. उच्चता विचारों से आती है, महापुरुषों के आदेश के अनुसार आती है।
11. मानव को यह अभिमान नहीं होना चाहिए कि मैंने कोई रचना की है, रचना का मूल कारण तो प्रभु है।
12. उच्च विचार होना, यह तो मानव का एक आभूषण है इस आभूषण को अपनाना चाहिए।
13. मानवता को नष्ट करने से मानव स्वयँ समाप्त हो जाता है।
14. समाज में यज्ञ होने चाहिए, यजमान ऊँचे होने चाहिए।
15. प्राचीन ऋषि मुनि अनुसन्धानपूर्वक सन्तानोपत्ति के द्वारा राष्ट्र तथा समाज को उन्नत बनाते थे।

सदस्यता

पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की ज्ञान गङ्गा का मासिक पत्रिका ''यौगिक प्रवचन'' में, वैदिक अनुसन्धान समिति द्वारा प्रकाशन किया जाता है और जिस के आजीवन सदस्य बनने के लिए शुल्क 800 रु. और वार्षिक सदस्य बनने के लिए शुल्क 100 रु. है जिसको आप समिति के पते के साथ-साथ निम्न किसी एक पते पर भी डाक द्वारा भेजकर सदस्य बन सकते हैं–

1. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, प्रकाशन मन्त्री
   ए-59, पँचशील एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017, फोन : 011-41030481
2. सुश्री नीरू अबरोल, कोषाध्यक्ष
   K-3, लाजपत नगर,-III, नई दिल्ली-110024 फोन : 011-41721294
3. श्री जितेन्द्र चौधरी, प्रचार मन्त्री
   ए-84, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, मोबाइल : 9811707343

सूचना

सभी आजीवन/वार्षिक सदस्यों को 'यौगिक प्रवचन' पत्रिका प्रत्येक मास की 10/11 तारीख को प्रेषित की जाती है। किसी भी सदस्य को पत्रिका प्राप्त न होने की स्थिति में अपने पोस्ट मैन से एक सप्ताह के समय में जानकारी करें और फिर भी न मिलने की स्थिति में अपने सम्बन्धित पोस्ट ऑफिस में इस विषय में लिखित एक प्रार्थना-पत्र पोस्ट मास्टर साहब को दें जिससे कि पत्रिका न मिलने की खोज-बीन डाक विभाग द्वारा कराके आपकी पत्रिका आपको समय पर मिलनी प्रारम्भ हो जाए। कृपया प्रार्थना-पत्र की एक प्रति पर डाक विभाग द्वारा प्राप्ति के हस्ताक्षर व मोहर लगवाकर हमें भी भेज देवें जिससे कि इस विषय में यहाँ भी डाक विभाग को अवगत करा दिया जाए।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

योगनिष्ठ पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (शृङ्गी ऋषि जी) की अमृतवाणी संहिता के रूप में

*1.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 1)	80.00
*2.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 2)	80.00
3.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 3)	60.00
*4.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 4)	100.00
5.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 5)	60.00
6.	Yogic Wisdom of Ancient Rishis	80.00
7.	वेद पारायण-यज्ञ का विधि विधान	25.00
8.	आत्म-लोक	35.00
9.	धर्म का मर्म	40.00
10.	शंका-निवारण	30.00
11.	यज्ञ-प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्व	40.00
12.	आत्मा व योग-साधना	35.00
*13.	देवपूजा	50.00
14.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	125.00
15.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 2)	125.00
16.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 3)	125.00
17.	रामायण के रहस्य	35.00
18.	यज्ञ एवं औषधि विज्ञान	40.00
19.	महाभारत के रहस्य	30.00
20.	अलङ्कार-व्याख्या	35.00
21.	रावण-इतिहास	50.00
22.	महाराजा-रघु का याग	30.00
23.	वनस्पति से दीर्घ-आयु	35.00
24.	मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	35.00
25.	चित्त की व वृत्तियों का निरोध	35.00
26.	आत्मा, प्राण और योग	35.00
27.	पञ्च-महायज्ञ	35.00
28.	अश्वमेघ-याग और चन्द्रसूक्त	40.00
29.	याग-मन्जूषा	40.00
30.	आत्म-दर्शन	30.00
31.	पुत्रेष्टि-याग और मात-दर्शन	30.00
32.	याग और तपस्या	60.00
33.	यागमयी-साधना	35.00
34.	यागमयी-सृष्टि	35.00
35.	याग-चयन	40.00
36.	दिव्य-रामकथा	120.00
37.	ज्ञान-कर्म-उपासना	35.00
38.	दिव्य-ज्ञान	40.00
*39.	महाभारत एक दिव्य दृष्टि	90.00
40.	महर्षि-विश्वामित्र का धनुर्याग	40.00
41.	आत्म-उत्थान	40.00
42.	तप का महत्व	40.00
43.	अध्यात्मवाद	40.00
44.	ब्रह्मविज्ञान	40.00
45.	वैदिक-प्रभा	35.00
46.	प्रकाश की ओर	35.00
47.	कर्तव्य में राष्ट्र	40.00
48.	वैदिक-विज्ञान	35.00
49.	धर्म से जीवन	35.00
50.	आत्मा का भोजन	40.00
51.	साधना	35.00
52.	त्रेताकालीन-विज्ञान	40.00
53.	यज्ञोमयी-विष्णु	40.00
54.	यौगिक प्रवचन माला भाग-6	80.00
55.	स्वर्ग का मार्ग	40.00
*56.	यौगिक प्रवचन माला भाग-7	80.00
57.	माता मदालसा	50.00
58.	यौगिक प्रवचन माला भाग-8	80.00
59.	यौगिक प्रवचन माला भाग-9	80.00
60.	यौगिक प्रवचन माला भाग-10	80.00
61.	याग एक सर्वाङ्ग पूजा	80.00
62.	यौगिक प्रवचन माला भाग-11	80.00
*63.	यौगिक प्रवचन माला भाग-12	80.00
64.	मानव कल्याण की चर्चाएँ	50.00
65.	प्रभु-दृर्शन	50.00
*66.	यौगिक प्रवचन माला भाग-13	80.00
67.	समाज उत्थान का मार्ग	50.00
*68.	यौगिक प्रवचन माला भाग-14	80.00
*69.	ब्रह्म की ओर	50.00
70.	ईश्वर मिलन	50.00
71.	यौगिक प्रवचन माला भाग-15	80.00
72.	यौगिक प्रवचन माला भाग-16	80.00
*73.	नैतिक शिक्षा	50.00

*सहजिल्द का मूल्य 20 रु. अतिरिक्त है।

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृतवाणी का साहित्य सँहिता, कैसेट्स, सी. डी. व डी. वी. डी. के रूप में निम्न स्थानों पर उपलब्ध हैः—

1. श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह, बरनावा, जिला—बागपत, (उ.प्र.)। मोबाइल नं 09719622950
2. श्री गुरुवचन शास्त्री, मकान नं. 165/30ए, दक्षिण भोपा रोड़, निकट माढ़ी की धर्मशाला, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)। मोबाइल नं. 09412888050
3. सुश्री. नीरू अबरोल, के-3 लाजपत नगर-3, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-41721294
4. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, A-59 पंचशील एन्क्लेव नई दिल्ली-110017 दूरभाष नं. 011-41030481
5. श्री जितेन्द्र चौधरी, ए-84, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, मो. नं. 9811707343
6. श्री अनिल त्यागी सी-47 रामप्रस्थ, गाजियाबाद (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-4165802
7. श्री आशीष त्यागी, सुपुत्र श्री सुशील त्यागी डी-293, रामप्रस्थ, पोस्ट ऑफिस चन्द्रनगर, गाजियाबाद पिन कोड-201011 (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-2642052
8. श्री लोमश त्यागी, 106/4 पंचशील कालोनी गढ़ रोड़, मेरठ, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09410452076
9. श्री विवेक त्यागी, 16ए, आलोक कॉलोनी, अल्कापुरी, हापुड़, (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0122-2316196
10. श्री संजीव त्यागी, 1107, सैक्टर-3, बल्लभगढ़, फरीदाबाद हरियाणा। मोबाइल नं. 09910589486
11. मैं. हर्ष मेडिकोज, ए-2/31, सैक्टर-110—मार्किट नोएडा, फेस-2, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 9899228860, 9871367937
12. पवन त्यागी सुपुत्र श्री राजाराम त्यागी, मौ. खड़खड़ियान, माता, ग्राम खरखौदा, जिला मेरठ (उ.प्र.) मोबाइल नं. 7536097171
13. श्रीमती बाला, 251, दिल्ली गेट, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23282088
14. डॉ. अशोक कुमार आर्य, आर्यावर्त कालोनी निकट मुरादाबादी गेट, अमरोहा, जिला-जे. पी. नगर (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09412139333
15. श्री सुमन कुमार शर्मा, जे-380, सैक्टर बीटा-2, ग्रेटर नोएडा, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09313530505
16. श्री सतीश भारद्वाज, ग्राम बहेडी, रोहाना मिल, जिला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)।
17. मैं. विजय कुमार, गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23977216

मासिक सहयोग

श्री हरीराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	1000 रुपये
श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर	1000 रुपये
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद, हरियाणा	1000 रुपये
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	500 रुपये
श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद	500 रुपये
मा. कार्तिक त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
मा. लोमश त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
डॉ. शुचि, डॉ. राजीव चावला, आणद, गुजरात	250 रुपये
श्री राकेश शर्मा, विराट नगर, पानीपत, हरियाणा	250 रुपये
श्री कृष्ण लाल बत्रा, इन्द्री, जिला करनाल	201 रुपये
मास्टर कवन्धि, रामप्रस्थ, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	101 रुपये
मास्टर सिद्धार्थ, अँकुर अपार्टमैन्ट, दिल्ली	101 रुपये
मास्टर अभ्युदय त्यागी, न्यू जर्सी, अमेरिका	101 रुपये

नम्र-निवेदन

समिति के बैंक के खाते में दान की राशि हस्तान्तरण करने से दानदाताओं का नाम, पता व उद्देश्य इत्यादि की जानकारी बैंक से प्राप्त नहीं हो पाती इसलिए सभी दानदाताओं से नम्र-निवेदन है कि राशि बैंक के खाते में हस्तान्तरण करने के साथ-साथ समिति की वेबसाइट पर या निम्न किसी भी एक पते पर दान राशि का अन्य विवरण सहित सूचना देने का कष्ट करें–

1. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, प्रकाशन मन्त्री
   ए-59, पँचशील एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017, फोन : 011-41030481
2. सुश्री नीरू अबरोल, कोषाध्यक्ष
   K-3, लाजपत नगर,-III, नई दिल्ली-110024 फोन : 011-41721294

।। ओ३म् ।।

। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

राष्ट्र कल्याणार्थ चतुर्थ चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायज्ञ एवम् योग साधना शिविर

दिनांक 24 दिसम्बर 2017 रविवार से 31 दिसम्बर 2017 रविवार तक
ग्राम खरखौदा यज्ञस्थली मौहल्ला तिहाई (महादेव मुण्डा मन्दिर के पास)

—: निमन्त्रण पत्र :—

प्रिय आत्मीय स्वजनों,

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से एवम् पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (पूर्व जन्म के शृङ्गी ऋषि जी) की पावमानी प्रेरणा से प्राणी मात्र के जीवन को तीव्रता से बढ़ते हुए प्रदूषण से निवारण करने के लिए और जीवन सत्ता को सम्पन्न बनाने के लिए **''चतुर्थ चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायज्ञ''** का आयोजन **''याग प्रचार समिति''** ग्राम खरखौदा द्वारा आप सबके सहयोग से अत्यन्त श्रद्धा व हर्षोल्लास से पाँच यज्ञवेदियों पर वैदिक परम्परा आदि ऋषियों द्वारा निर्धारित कर्मकाण्ड पद्धति अनुसार सम्पन्न होगा। अतः आपसे नम्र निवेदन है कि इस महायज्ञ में प्रातः व सायँ समयानुसार अपने परिवार, सम्बन्धी व मित्रों सहित उपस्थित होकर तन, मन, धन से आहुति प्रदान करके अपने जीवन के मार्ग को प्रशस्त करते हुए, जीवन में आने वाले उद्देश्य की ओर अग्रसित होते हुए ऊर्ध्वागति में संलग्न रहें।

यज्ञ के ब्रह्मा – आचार्य श्री गुरुवचन शास्त्री जी, लाक्षागृह, बरनावा।

आचार्य एवम् वेदपाठी – श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय लाक्षागृह, बरनावा के ब्रह्मचारीगण।

आमन्त्रित पूज्यनीय सन्यासी – महामण्डलेश्वर स्वामी असङ्गानन्द जी महाराज, परमार्थ निकेतन ऋषिकेश एवम् पूज्य प्रणव जी महाराज गौतमनगर, नई दिल्ली।

आमंत्रित विद्वतगण – श्री माया प्रकाश जी, श्री विनोद कुमार शास्त्री प्रधानाचार्य।

—: कार्यक्रम :—

दिनांक 24 दिसम्बर 2017 से 30 दिसम्बर 2017 तक

प्रातः 7:15 बजे ओ३म् ध्वजारोहण (प्रथम दिवस) एवम् ब्रह्मयज्ञ (संध्या)

प्रातः 8:00 बजे से **11:15 बजे** तक यज्ञ व प्रवचन

सायं: 2:15 बजे से **5:15 बजे** तक यज्ञ व प्रवचन

दिनांक 31 दिसम्बर 2017 प्रातः

प्रातः 8:00 बजे से **11:00 बजे** तक यज्ञ और महायज्ञ की पूर्णाहुति तत्पश्चात् प्रवचन एवं आर्शीवाद शान्ति पाठ व ब्रह्मभोज। **निवेदक समस्त खरखौदा निवासी**

योगमुद्रा में प्रवचन करते हुए पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

उद्‌बोधन

हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के ऋणों की चर्चा आती है। आज मैं उन ऋणों की चर्चा में जाना नहीं चाहता हूँ, केवल अपने प्यारे प्रभु का गुण-गान गाते हम अपना अध्ययन प्रारम्भ कर देते हैं। प्रायः सभी मानवों का यह कर्त्तव्य हो जाता है–**प्रातःकाल की अमृतमयी वेला में जागरुक हो जाने के पश्चात् प्रभु का चिन्तन करना, उसकी महिमा को विचारना मानव का एक महान कर्तव्य हो जाता है।** आज कोई मानव यह कह रहा है कि मैं किसी प्राणी के लिए यह कार्य कर रहा हूँ या चेतना के लिए ईश्वर तत्व के लिए परन्तु यह नहीं माना जाता। **संसार में जो भी कर्म करता है वह मानव स्वयं अपने ही लिए करता है। अपनेपन में ही उसे प्रसिद्धि प्राप्त होती है।** अपनेपन में ही उसे नाना प्रकार से उसका आत्म हृदय उसको धिक्कारने लगता है परन्तु जिसका अन्तरात्मा धिक्कारता है उस मानव को ही संसार में जीने का अधिकार प्राप्त नहीं होना चाहिए। क्योंकि जीवन उन प्राणियों को सदैव प्राप्त होना चाहिए जिनको अपनी आत्मा पर, स्वयँ की प्रवृत्तियों पर विश्वास और श्रद्धा नहीं होती उस मानव का अन्तरात्मा उसको धिक्कारता रहता है परन्तु वह सदैव अपने प्रकृति के आवेशों में आ करके अपनी प्रतिभा को ऐसे प्राप्त कर देता है जैसे सायँकाल के सूर्य की किरणें अस्त हो जाती हैं। मानव का संसार में एक ही कर्तव्य रहता है कि दुर्गुणों को त्यागना और शुभ कर्मों को अपनाना। यह मानव का विचित्र कर्तव्य होता है। जिनके ऊपर मानव को अध्ययन करना है।

पूज्यपाद-गुरुदेव